National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 399-401

पारम्परिक भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रत्यक्ष अनुभूति से सम्बन्धित सामान्य की अवधारणा का एक तुलनात्मक अध्ययन

Amit Kumar Singh
Research Scholar, Department of Philosophy, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

पश्चात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में भी सामान्य की अवधारणा पर गहन विवेचन पाया जाता है। भारतीय दार्शनिकों ने अपने–अपने दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर सामान्य का स्वरूप निर्धारित किया है। मुख्य रूप से न्याय–वैशेषिक दर्शन, जैन दर्शन, अद्वैत वेदान्त दर्शन और बौद्ध दर्शन में ही सामान्य की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय दर्शन में न्याय–वैशेषिक सम्प्रदाय सामान्य के सन्दर्भ में यथार्थवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। न्याय–वैशेषिकों ने अपनी वस्तुवादी परम्परा के अनुसार 'सामान्य' को भी वस्तु सत् माना है। न्याय–वैशेषिक 'सामान्य' को नित्य एवं शाष्वत् पदार्थ मानते हैं जो व्यक्तियों से भिन्न होते हुए भी उनमें समवेत रहता है। विभिन्न विशेषों में एकता की प्रतीति इसी सामान्य के कारण होती है। वात्स्यायन के अनुसार जो पदार्थ अनेक (द्रव्यरूप) व्यक्तियों में एक समान ज्ञान होने का निमित्त बनता है, उसको सामान्य कहते हैं। इसमें सामान्य मानसिक सम्प्रत्यय मात्र नहीं है। उसकी उतनी ही वास्तविक सत्ता है जितनी विशेषों की। विशेषों के विनाश का भी उनकी सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वैशेषिक दर्शन में विभिन्न व्यक्तियों में एकाकारता की अनुभूति या अनुवृत्ति प्रत्यय की व्याख्या के लिए 'सामान्य' नामक एक स्वतन्त्र पदार्थ की सत्ता स्वीकार की गयी है। कणाद ने जिन छः पदार्थों के साधर्म्य (अनुगत धर्म) और वैधर्म्य (विपरीत धर्म) के ज्ञान के द्वारा उत्पन्न तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति का उल्लेख किया है, उनमें से सामान्य भी एक है। इसे 'जाति' भी कहा जाता है। यह वह पदार्थ है जिसके कारण भिन्न–भिन्न व्यक्ति एक जाति के अन्तर्गत समाविष्ट होकर एक नाम से जाने जाते हैं। वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'सामान्य' एक नित्य पदार्थ है जो एक होते हुए भी अनेक विशिष्ट वस्तुओं में वर्तमान रहता है। तर्कसंग्रह में भी 'सामान्य' को नित्य और अनेक वस्तुओं में अनुगत कहकर परिभाषित किया गया है। 'सामान्य' किसी देश–काल में न होते हुए भी द्रव्य, गुण, कर्म इत्यादि में समवेत होते हैं, किन्तु न्याय–वैशेषिक, प्लेटो तथा रसेल की भाँति सामान्यों के लिए किसी अतीन्द्रिय लोक की कल्पना नहीं करते, अपितु अरस्तू के समान वे सामान्य और विशेष दोनों को एक ही जगत के अन्तर्गत सत् मानते हैं।

पाश्चात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन में भी 'सामान्य' का नामवादी सिद्धान्त मिलता है। बौद्धों का 'अपोहवाद' नामवाद का ही एक रूप है। नामों के द्वारा ही हमारे मन में सामान्यों का विचार उत्पन्न होता है। बौद्ध दर्शन के अपोहवाद में व्यक्ति ही पदार्थ माने जाते हैं। इसमें व्यक्ति के अतिरिक्त जाति या सामान्य की कोई सत्ता नहीं स्वीकार की जाती है। इसमें सामान्य नाममात्र है। सामान्य को नाम कहने से केवल यह ज्ञात होता है कि एक नाम वाले पदार्थ अन्य नाम वाले पदार्थों से भिन्न हैं। शब्दों या नामों द्वारा केवल विशेष पदार्थ ही प्रतिबिम्बित हो सकते हैं, सामान्य नहीं। अपोह का अर्थ है, अतद्व्यावृत्ति या तद्भिन्न भिन्नत्व अर्थात् किसी वस्तु की भिन्नता से भिन्न होना, जैसे– राम, श्याम, मोहन आदि अनेक मनुष्यों में जो समानता प्रतीत होती है, उसका कारण उनमें विद्यमान 'मनुष्यत्व' नामक कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, अपितु अमनुष्यव्यावृत्त या मनुष्य भिन्न सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से भिन्न होना है। बौद्धों के अनुसार बाह्य जगत् सत्ता के पृथक्–पृथक् और विविक्त क्षणों का नाम है। उन क्षणों में पारस्परिक संगति या सातत्य एक विचार मात्र है। वह कल्पनाप्रसूत् है, वास्तविक नहीं है। बौद्ध 'स्वलक्षण' के अतिरिक्त अन्य किसी को वास्तविक नहीं मानते। उनका यह भी कथन है कि सामान्य को मानने पर उसका भी सामान्य मानना होगा और इस प्रकार अनवस्था दोष उत्पन्न होगा। बौद्धों का यह सिद्धान्त सामान्य की सत्ता का निराकरण करता है। अतः इसे नामवाद के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है।

भारतीय दर्शन में जैन दर्शन और अद्वैत वेदान्त का सामान्य सम्बंधी सिद्धान्त पाश्चात्य दर्शन के सामान्यों के अवधारणावादी सिद्धान्त के निकट है। जैन एवं अद्धैत वेदान्त के अनुसार सामान्य विशेषों का आन्तरिक स्वरूप है, जिसका बोध बुद्धि के द्वारा होता है। इसका विशेषों के साथ तादात्म्य सम्बंध है। इसमें व्यक्तियों या वस्तुओं से भिन्न एवं अतिरिक्त सामान्य की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सामान्य कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, अपितु एक मानसिक अथवा बौद्धिक सम्प्रत्य मात्र है, जैन दार्शनिक बाह्य जगत् में इसका आधार तो मानते हैं, किन्तु उसे नित्य नहीं मानते हैं। अद्वैत वेदान्ती व्यक्तियों के अतिरिक्त और उनसे भिन्न सामान्य की सत्ता नहीं मानता है। सामान्य की सत्ता व्यक्तियों से पृथक् नहीं, अपितु अभिन्न है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय मनिषियों ने अपने–अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरूप सामान्य का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपने–अपने सिद्धान्तों और मतों के अनुरूप सामान्य की समस्या पर चर्चा की है और उसका स्वरूप निर्धारित किया है।

वैशेषिक मत

कणाद ने जिन छः पदार्थों के साधर्म्य (अनुगत धर्म) और वैधर्म्य (विपरीत धर्म) के ज्ञान के द्वारा उत्पन्न तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति का उल्लेख किया है, उनमें से सामान्य भी एक बताया है। उनका यह भी कथन है कि सामान्य के दो रूप होते हैं–(1) सामान्य अर्थात् केवल अनुवृत्ति बुद्धि से सम्बद्ध सामान्य तथा (2) सामान्यविशेष अर्थात् अनुवृत्ति और व्यावृत्ति रूप उभयविधबुद्धि से सम्बद्ध–सामान्य। प्रशस्तपाद कणाद के कथन को स्पष्ट करते हुये यह कहा कि सामान्य का उपर्युक्त प्रथम रूप परसामान्य कहलाता है और द्वितीय रूप अपरसामान्य। पर सामान्य केवल सत्ता है

जिसमें महाविषयत्व यानी सर्वाधिक देशवृत्तिता है। उससे केवल अनुगत प्रतीति ही होती है। सामान्याश्रय द्रव्यादि तीन पदार्थों में वह अनुगत बुद्धि को ही उत्पन्न करता है, न कि व्यावृत्तिबुद्धि को। जिस प्रकार परस्पर भिन्न चर्म, वस्त्र, कम्बल आदि द्रव्यों में 'नील–नील' इत्याकारक एकाकार ज्ञान होता है, उसी प्रकार से भिन्न–भिन्न पृथ्वी आदि नौ द्रव्यों, रूप आदि चौबीस गुणों और उत्क्षेपण आदि पाँच कर्मों में भी 'सत्–सत्' ऐसा एकाकार ज्ञान होता है। अपर सामान्य अनुगत बुद्धि और भेदबुद्धि दोनों का कारण होता है अतः वह सामान्य–विशेष कहलाता है। उदाहरणतया द्रव्यत्व पृथ्वी, जल आदि नौ द्रव्यों में अनुगत बुद्धि का कारण है किन्तु गुण और कर्म से वह भेदबुद्धि का कारण भी है। अतः वह सामान्य तथा विशेष उभयरूप है।

'सामान्य' अपने विषय में समवाय सम्बन्ध से रहता है। यद्यपि सामान्य अनियत देश होने के कारण, सर्वत्र उत्पन्न होने वाले स्वविषयक गो व्यक्तियों के समान वहाँ पर वर्तमान अष्वादि व्यक्तियों में भी सम्बद्ध हो सकता है, किन्तु गोत्व जाति के अभिव्यंजक सास्नादि रूप अवयव–संस्थान के गो रूप व्यक्तियों में नियत होने के कारण गोत्व जाति का गो व्यक्तियों में ही समवाय है, न कि अश्व आदि पिण्डों में।

न्यायमत

वात्सयायन के अनुसार जो पदार्थ अनेक (द्रव्यरूप) व्यक्तियों में एक समान ज्ञान होने का निमित्त बनता है, उसको सामान्य कहा जाता है। उत्तरवर्त्ती प्रकरण ग्रन्थकारों ने भी सामान्य का लगभग ऐसा ही लक्षण किया है। आशय यह है कि जो एक है, नित्य है और अनेकों में समवेत रहता है, उसको सामान्य कहते हैं। सामान्य को ही जाति भी कहा गया है। 'यह गाय है, यह गाय है' इस रूप में होने वाली समानाकारक बुद्धि ही सामान्य है। नैयायिकों के अनुसार सामान्य की उपलब्धि व्यक्ति की उपलब्धि के अधीन है। जाति और व्यक्ति की उपलब्धि साथ–साथ होती है। उनमें कालकृतभेद नहीं होता। सामान्य व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध से रहता है, जो अयुतसिद्ध दो पदार्थों के बीच ही रहता है।

बौद्धमत

बौद्ध दार्शनिकों के मतानुसार 'सामान्य' केवल नाममात्र यानी संज्ञामात्र है। अर्थात् वह वास्तविक नहीं अपितु कल्पनामात्र है। वे पदार्थ को क्षणिक मानते हैं और जाति या सामान्य की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। अनेकों घटों में 'यह घट है'–ऐसा जो ज्ञान होता है उसका कारण वे अपोह को मानते हैं। अपोह का अर्थ है अतद्व्यावृत्ति यानी तद्भिन्नभिन्नत्व। अतः उनके मतानुसार घटभिन्न–भिन्नत्व सभी घटों का अनुगमक है। यह ज्ञातव्य है कि बौद्धों के मतानुसार अपोह ही एकाकार प्रतीति का कारण है न कि सामान्य। विभिन्न गो व्यक्तियों में उपलब्ध जिस समान धर्म को वैशेषिकों ने सामान्य कहा है, वह बौद्धों के कथनानुसार 'अगोव्यावृत्तिरूप' अपोह है। बौद्धों के अनुसार बाह्य जगत् सत्ता के पृथक्–पृथक् और विविक्त क्षणों का नाम है। उन क्षणों में पारस्परिक संगति या सातत्य एक विचार मात्र है। वह कल्पना प्रसूत है, वास्तविक नहीं है। बौद्ध 'स्वलक्षण' के अतिरिक्त अन्य किसी को वास्तविक नहीं मानते। उनका यह भी कथन है कि सामान्य को मानने पर उसका भी सामान्य मानना होगा और इस प्रकार अनवस्था हो जायेगी। बौद्धों के इस तर्क का खण्डन कुमारिल इस आधार पर करते हैं कि सामान्य में जो सामान्यत्व है वह शब्दमात्र है जबकि सामान्य का अपना पृथक अस्तित्व है। उदयनाचार्य ने इसको अनवस्था के कारण जातिबाधक उपाधि कहा है।

जैन मत

जैन मत में सामान्य की सत्ता को स्वीकार तो किया गया है, किन्तु सामान्य के स्वरूप के सम्बन्ध में उनका वैशेषिकों से मतभेद है। वैशेषिकों के अनुसार सामान्य व्यक्ति से भिन्न है, जब कि जैनों के अनुसार वह व्यक्ति से भिन्न नहीं है। जैन दार्शनिक सामान्य को बौद्धों की तरह नाममात्र नहीं मानते। जैन लोग व्यक्तियों में अनुस्यूत नित्य सामान्य को नहीं मानते। उनके अनुसार प्रत्येक पदार्थ में सामान्य और विशेष दोनों धर्म पाये जाते हैं। अतः प्रत्येक पदार्थ अनुगत प्रत्यय और व्यावृत्ति प्रत्यय का विषय है। विभिन्न व्यक्तियों में जो एकाकार प्रतीति होती है वह सादृश्यास्तित्व के कारण होती है। सादृश्यास्तित्व ही सादृश्यसामान्य या तिर्यक् सामान्य कहलाता है। संक्षेपतः जैनों के अनुसार सामान्य अपने वर्ग के व्यक्तियों में पाया जाने वाला धर्म है, किन्तु वह व्यक्ति से भिन्न नहीं है।

मीमांसक मत

मीमांसकों ने सामान्य (जाति) को स्वीकार किया है, किन्तु वे सामान्य और व्यक्ति के बीच समवाय सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। भाट्ट मीमांसक जाति–व्यक्ति, गुण–गुणी आदि में समवाय के स्थान पर भेदाभाद सिद्धान्त को मानते हैं, जबकि नैयायिकों का यह मत है कि जाति व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध से रहती है।

कुमारिल का यह भी कथन कि प्रत्येक पदार्थ एवं व्यक्ति के अन्दर सामान्य तथा विशेष दोनों तत्व रहते हैं। जाति तथा व्यक्ति परस्पर आश्रित है। सामान्य और विशेष में भेद भी है और अभेद भी। अतः उनमें भेदाभाव रूप तादात्म्य है। प्रभाकर के अनुसार सामान्य व्यक्ति से भिन्न होता है। उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। सामान्य और व्यक्ति के बीच समवाय सम्बन्ध है। किन्तु समवाय सम्बन्ध न तो एक होता है और न ही नित्य। कुमारिल के अनुसार व्यक्ति और सामान्य के बीच तादात्म्य सम्बन्ध होता है, न कि समवाय। यह ज्ञातव्य है कि वैशेषिकों के मतानुसार समवाय एक, नित्य सम्बन्ध तो है किन्तु वह प्रत्यक्षगम्य नहीं है, जब कि नैयायिक उसे एक तथा नित्य के साथ ही प्रत्यक्षगम्य भी मानते हैं।

वेदान्तमत

वेदान्त में विशेषों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता। उनके अनुसार 'सत्ता' के अतिरिक्त अन्य कुछ भी वास्तविक नहीं है, यह ज्ञातव्य है कि बौद्ध 'स्वलक्षण' को ही सत्य मानते हैं अन्य किसी चीज़ को नहीं। अतः वेदान्तियों का मत बौद्धों के मत से नितान्त भिन्न है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय मनिषियों ने अपने–अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरूप सामान्य का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपने–अपने सिद्धान्तों और मतों के अनुरूप सामान्य की समस्या पर चर्चा की है और उसका स्वरूप निर्धारित किया है।

संदर्भ

1. वैशेशिक सूत्र, 1.1.4
2. न्यायभाष्य, 2.2.68
3. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली
4. तत्वसंग्रह पंजिका, पृष्ठ 1.9
5. श्लोकवार्तिक, आकृति 67–74
6. Stace WT. A Critical History of Greek Philosophy, 194

7. सर्वसर्वगतः वा स्यात्, न्या० मं०
8. जातिरेवाकृतिं प्राह व्यक्ति र्विज्ञायते तया।
   सामान्यं तच्च पिण्डानामेकबुद्धिनिबन्धनम्।। श्लो० वा० 3
9. सिंह, बी० एन०, वैशेषिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 151
10. विनाशारम्भरहितेषु नितेषु अण्वाकाशकालदिगात्ममनस्सु प्रतिद्रव्यमैककशौ वर्तमाना अत्यन्तवयावृत्तिबुद्धिहेतवः प्रशस्तपादभाष्यम्, विशेषप्रकरणम्, पृ० 284